

पर्यावरण नीतिशास्त्र : प्रकृति के प्रति मानव के दायित्व का दार्शनिक परीक्षण

Environmental Ethics: A Philosophical Examination of Human Responsibility Towards Nature

डॉ सच्चिदानंद मिश्र

अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र

प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ़ एक्सीलेंस

शासकीय शहीद केदारनाथ महाविद्यालय मऊगंज

सारांश (Abstract)

पर्यावरण नीतिशास्त्र (Environmental Ethics) दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो प्रकृति, पारिस्थितिकी और समस्त जीवजगत के प्रति मानव के नैतिक दायित्वों का विवेचन करती है। वर्तमान युग में जब जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का ह्रास, वनों की अंधाधुंध कटाई, जल-संकट और वायु प्रदूषण जैसी समस्याएँ विश्वव्यापी संकट का रूप ले चुकी हैं, तब यह प्रश्न अत्यन्त प्रासंगिक हो जाता है कि प्रकृति के प्रति मानव का क्या दायित्व है और इस दायित्व का दार्शनिक आधार क्या है। प्रस्तुत शोध पत्र पाश्चात्य और भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के प्रकाश में पर्यावरण नीतिशास्त्र के विविध आयामों का परीक्षण करता है। इसमें मानवकेन्द्रवाद (Anthropocentrism), जीवकेन्द्रवाद (Biocentrism), पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद (Ecocentrism) और गहरी पारिस्थितिकी (Deep Ecology) जैसे प्रमुख दार्शनिक दृष्टिकोणों का समालोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। साथ ही भारतीय दर्शन में वसुधैव कुटुम्बकम्, अहिंसा, ऋतम्भरा प्रज्ञा, पंचभूत की अवधारणाएँ और गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को पर्यावरणीय नैतिकता के वैकल्पिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्षतः यह प्रतिपादित किया गया है कि पर्यावरण संकट मूलतः एक नैतिक और दार्शनिक संकट है जिसके समाधान के लिए एक समग्र, समावेशी और टिकाऊ पर्यावरणीय नैतिकता की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

पर्यावरण नीतिशास्त्र, प्रकृति, मानव दायित्व, मानवकेन्द्रवाद, जीवकेन्द्रवाद, पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद, गहरी पारिस्थितिकी, जलवायु न्याय, अहिंसा, वसुधैव कुटुम्बकम्, सतत विकास, जैव-विविधता।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता स्वयं। आदिम मानव ने प्रकृति को अपनी माता, देवी और जीवनदात्री के रूप में पूजा। वैदिक काल में 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् 'पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ'—की उद्घोषणा इसी गहरे नैतिक संबंध की अभिव्यक्ति थी। किन्तु आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने इस सम्बन्ध को मूलतः बदल दिया—प्रकृति अब देवी नहीं, एक संसाधन बन गई; पर्यावरण अब आराधना का विषय नहीं, दोहन का वस्तु बन गया।

इस परिवर्तन के परिणाम आज हम सभी देख रहे हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि, ध्रुवीय हिमखण्डों का पिघलना, समुद्र-स्तर का उठना, तूफान और बाढ़ की बढ़ती तीव्रता, मरुस्थलीकरण, जल-स्रोतों का सूखना और हजारों प्रजातियों का विलोपन ये सभी उस पर्यावरणीय संकट के लक्षण हैं जिसे वैज्ञानिक 'छठा महाविलोपन' (Sixth Mass Extinction) कह रहे हैं। इस संकट की जड़ें तकनीकी या आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और दार्शनिक हैं। यदि मानव की यह मान्यता ही गलत हो कि प्रकृति केवल उसके उपयोग के लिए है, तो इस मान्यता को ही बदलना होगा।

पर्यावरण नीतिशास्त्र इसी दार्शनिक आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह शाखा 1970 के दशक में एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में उभरी, जब ऑस्ट्रेलियाई दार्शनिक पीटर सिंगर, अमेरिकी पर्यावरणविद् अल्डो लियोपोल्ड और नॉर्वेजियन दार्शनिक आर्ने नेस (Arne Naess) ने प्रकृति के अंतर्निहित मूल्य (Intrinsic Value) का दार्शनिक तर्क प्रस्तुत किया। किन्तु इन विचारों के बीज भारतीय, चीनी और अनेक आदिवासी दार्शनिक परम्पराओं में सहस्राब्दियों से विद्यमान थे। प्रस्तुत शोध पत्र इन सभी परम्पराओं के समन्वित विश्लेषण के माध्यम से पर्यावरणीय दायित्व का एक समग्र दार्शनिक ढाँचा प्रस्तुत करता है।

भारतीय संदर्भ में पर्यावरण नीतिशास्त्र का विशेष महत्व है क्योंकि भारत की विशाल जनसंख्या, जैव-विविधता की अद्वितीय सम्पदा, और विकास की अनिवार्यता के बीच का तनाव एक जटिल नैतिक दुविधा प्रस्तुत करता है। गंगा

की सफाई, वन अधिकार, जल-संसाधन प्रबन्धन, आदिवासी भूमि अधिकार — ये सभी मुद्दे पर्यावरण नीतिशास्त्र के व्यावहारिक प्रश्न हैं जिनके उत्तर दार्शनिक आधारों पर तलाशे जाने चाहिए।

शोध पत्र का उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार निर्धारित किए गए हैं। प्रथम उद्देश्य यह है कि पर्यावरण नीतिशास्त्र की अवधारणा, उसके ऐतिहासिक विकास और उसके प्रमुख प्रश्नों को स्पष्ट किया जाए, जिससे इस विषय की दार्शनिक प्रकृति और महत्व को समझा जा सके। द्वितीय उद्देश्य यह है कि पर्यावरण नीतिशास्त्र के प्रमुख पाश्चात्य दृष्टिकोणों मानवकेन्द्रवाद, जीवकेन्द्रवाद, पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद और गहरी पारिस्थितिकी — का समालोचनात्मक परीक्षण किया जाए और उनकी शक्तियों एवं सीमाओं को उजागर किया जाए।

तृतीय उद्देश्य यह है कि भारतीय दार्शनिक परम्पराओं — वैदिक, बौद्ध, जैन, गाँधीवादी और आदिवासी — में निहित पर्यावरणीय नैतिकता के तत्त्वों को उजागर किया जाए और यह दर्शाया जाए कि ये परम्पराएँ वर्तमान पर्यावरण संकट के लिए कितनी प्रासंगिक हैं। चतुर्थ उद्देश्य यह है कि जलवायु न्याय, अन्तरपीढ़ीगत नैतिकता (Intergenerational Ethics), प्रकृति के अधिकार और सतत विकास जैसे समकालीन पर्यावरणीय नैतिकता के प्रश्नों का दार्शनिक विश्लेषण किया जाए। पंचम उद्देश्य यह है कि पर्यावरणीय दायित्व के लिए एक समन्वित और व्यावहारिक दार्शनिक ढाँचे का प्रस्ताव किया जाए जो भारतीय और वैश्विक संदर्भ में उपयोगी हो।

महत्व (Significance)

प्रस्तुत शोध पत्र का महत्व कई स्तरों पर देखा जा सकता है। दार्शनिक स्तर पर यह शोध पत्र पर्यावरण नीतिशास्त्र के विमर्श में भारतीय दार्शनिक परम्पराओं का योगदान रेखांकित करता है जो प्रायः पाश्चात्य केन्द्रित अकादमिक विमर्श में उपेक्षित रह जाती हैं। भारतीय दर्शन में अहिंसा, सर्वभूतहित और पंचभूत की अवधारणाएँ एक वैकल्पिक और समृद्ध पर्यावरणीय दृष्टि प्रस्तुत करती हैं जिन्हें वैश्विक विमर्श में उचित स्थान मिलना चाहिए।

पारिस्थितिकीय स्तर पर यह शोध पत्र इस तथ्य को रेखांकित करता है कि पर्यावरण संकट केवल एक वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं है—यह उन मूल्यों और मान्यताओं का संकट है जिनके आधार पर मानव ने प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध परिभाषित किया है। जब तक इन मूल मान्यताओं को दार्शनिक स्तर पर नहीं बदला जाएगा, तकनीकी

और नीतिगत उपाय अपर्याप्त सिद्ध होंगे। सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर पर्यावरण नीतिशास्त्र जलवायु न्याय, पर्यावरणीय नस्लवाद (Environmental Racism), आदिवासी भूमि अधिकार और विकास बनाम पर्यावरण के द्वंद्व को नैतिक परिप्रेक्ष्य में रखता है।

शैक्षणिक और नीतिगत स्तर पर यह शोध पत्र दर्शनशास्त्र, पर्यावरण विज्ञान, विधि और नीति-निर्माण के क्षेत्र में कार्यरत विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं और नीति-निर्माताओं के लिए एक उपयोगी सन्दर्भ सामग्री प्रस्तुत करता है। विशेषकर भारत में जहाँ पर्यावरणीय कानून और नीतियाँ निरन्तर विकसित हो रही हैं, एक दार्शनिक आधार की आवश्यकता स्पष्ट है।

पर्यावरण नीतिशास्त्र: प्रकृति के प्रति मानव के दायित्व का दार्शनिक परीक्षण

1. पर्यावरण नीतिशास्त्र: अवधारणा और ऐतिहासिक विकास

पर्यावरण नीतिशास्त्र उन नैतिक सिद्धान्तों और मूल्यों का अध्ययन है जो मानव के पर्यावरण के साथ सम्बन्ध को नियन्त्रित और निर्देशित करते हैं। इसकी मूल प्रश्नावली है क्या प्रकृति का कोई अंतर्निहित नैतिक मूल्य है, या उसका मूल्य केवल मानवीय उपयोग से निर्धारित होता है? क्या मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों, वनस्पतियों और पारिस्थितिकीय तन्त्रों के भी नैतिक अधिकार हैं? भावी पीढ़ियों के प्रति हमारा क्या दायित्व है? और प्रकृति के संरक्षण के लिए व्यक्ति, समाज और राज्य की नैतिक जिम्मेदारी क्या है?

ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यावरणीय नैतिकता के विचार-बीज विभिन्न परम्पराओं में प्राचीन काल से मिलते हैं। प्राचीन यूनान में प्रकृति के साथ सामंजस्य पर बल दिया जाता था। रोमन विचारक सिसेरो ने प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन जीने की नैतिक अनिवार्यता पर प्रकाश डाला था। मध्यकाल में सन्त फ्रांसिस ऑफ असीसी ने 'सिस्टर सन', 'ब्रदर विंड' और 'मदर अर्थ' की भाषा में प्रकृति के प्रति सम्बन्ध-भाव व्यक्त किया जो पर्यावरण नीतिशास्त्र का एक पूर्व-आधुनिक रूप था। आधुनिक युग में 1949 में अल्डो लियोपोल्ड की 'ए सैण्ड काउण्टी आल्मनेक' और विशेषकर उसमें प्रस्तुत 'लैंड एथिक' (भूमि नैतिकता) को पर्यावरण नीतिशास्त्र की आधारशिला माना जाता है।

1960 के दशक में रेचल कार्सन की 'साइलेंट स्प्रिंग' (1962) ने कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को उजागर कर पर्यावरण चेतना को जागृत किया। 1970 में 'पृथ्वी दिवस' (Earth Day) की स्थापना और 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित प्रथम संयुक्त

राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन ने पर्यावरणीय नैतिकता को वैश्विक विमर्श में लाया। 1972 में ही आर्ने नेस ने 'गहरी पारिस्थितिकी' (Deep Ecology) की अवधारणा प्रस्तुत की जो बाद में पर्यावरण नीतिशास्त्र का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय बन गया। 1992 में रियो पृथ्वी सम्मेलन और 2015 में पेरिस जलवायु समझौते ने पर्यावरणीय दायित्व को एक अन्तर्राष्ट्रीय नैतिक-राजनीतिक प्रश्न बनाया।

2. मानवकेन्द्रवाद और उसकी सीमाएँ-

मानवकेन्द्रवाद (Anthropocentrism) पर्यावरण नीतिशास्त्र का वह दृष्टिकोण है जो मानता है कि नैतिक विचार का केन्द्र केवल मनुष्य है और प्रकृति का मूल्य मानवीय उपयोग और हित पर निर्भर है। इस दृष्टिकोण की जड़ें ग्रीक दर्शन में अरस्तू के विचारों में, बाइबल की उस व्याख्या में जो मनुष्य को सृष्टि का 'अधिपति' बताती है, और आधुनिक दर्शन में देकार्त के द्वैतवाद (Dualism) में मिलती हैं जिसने प्रकृति को एक यन्त्र के समान माना। फ्रांसिस बेकन ने विज्ञान को प्रकृति पर 'विजय' का साधन बताया और यही दृष्टि औद्योगिक क्रांति के साथ पर्यावरण के अनियन्त्रित दोहन का दार्शनिक आधार बन गई।

मानवकेन्द्रित दृष्टिकोण दो प्रकार का होता है—कठोर मानवकेन्द्रवाद (Strong Anthropocentrism) और उदार मानवकेन्द्रवाद (Weak Anthropocentrism)। कठोर मानवकेन्द्रवाद में प्रकृति का कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं है; उदार मानवकेन्द्रवाद में पर्यावरण संरक्षण इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह दीर्घकालिक मानव हित में है। ब्रायन नॉर्टन का 'कमजोर मानवकेन्द्रवाद' यह तर्क देता है कि 'रूपान्तरित प्राथमिकताएँ' (Transformed Preferences)—अर्थात् सौन्दर्यबोध, आध्यात्मिक अनुभव और पर्यावरणीय जागरूकता से परिष्कृत प्राथमिकताएँ—पर्यावरण संरक्षण का पर्याप्त आधार प्रदान कर सकती हैं।

मानवकेन्द्रवाद की प्रमुख सीमा यह है कि यह प्रकृति की सम्पूर्ण नैतिक स्थिति को नकारता है। यदि किसी प्रजाति का विलोपन मानव के लिए उपयोगी हो, तो मानवकेन्द्रवाद उसे रोकने का कोई नैतिक आधार नहीं दे सकता। इसी कारण कई पर्यावरण-दार्शनिकों ने इसे पर्यावरण संकट का मूल कारण माना है और मानव-केन्द्रित सोच से परे जाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

3. जीवकेन्द्रवाद: समस्त जीवन का नैतिक मूल्य-

जीवकेन्द्रवाद (Biocentrism) वह दृष्टिकोण है जो समस्त जीवधारियों—मानव, पशु, पक्षी, कीट, वनस्पति—में अंतर्निहित नैतिक मूल्य स्वीकार करता है। इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रतिनिधि पॉल टेलर हैं जिन्होंने 1986 में 'रिस्पेक्ट फॉर नेचर' (Respect for Nature) में 'अपने अच्छे के लिए जी रहे प्राणियों' (Organisms with a Good of Their Own) की अवधारणा प्रस्तुत की। उनका तर्क है कि प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व और विकास की ओर प्रयत्नशील है—इसलिए उसका एक स्वतन्त्र 'हित' (Interest) है—और यह हित नैतिक सम्मान का आधार है।

अल्बर्ट श्वाइत्ज़र (Albert Schweitzer) की 'जीवन के प्रति श्रद्धा' (Reverence for Life) की अवधारणा जीवकेन्द्रवाद का एक अत्यन्त मार्मिक दार्शनिक प्रस्तुतीकरण है। श्वाइत्ज़र का कहना था कि नैतिक मनुष्य वह है जो न केवल मनुष्य के जीवन को, बल्कि समस्त जीवन को उतनी ही पवित्रता से देखे जितनी अपने स्वयं के जीवन को। यह विचार भारतीय जैन दर्शन की अहिंसा की अवधारणा से गहरे साम्य रखता है जो 'एकेन्द्रिय जीव'—अर्थात् एक इन्द्रिय वाले जीव जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति की हिंसा से भी बचने की शिक्षा देता है।

जीवकेन्द्रवाद की एक प्रमुख चुनौती 'टकराहट की समस्या' (Problem of Conflicts) है जब मानव और अन्य प्राणियों के हित परस्पर विरोधी हों तो किसे प्राथमिकता दी जाए? टेलर इस समस्या के लिए 'आत्मरक्षा', 'समानुपात', 'न्यूनतम हानि' और 'वितरणात्मक न्याय' के सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। किन्तु व्यावहारिक स्थितियों में इन सिद्धान्तों का अनुप्रयोग अत्यन्त जटिल हो जाता है।

4. पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद और गहरी पारिस्थितिकी-

पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद (Ecocentrism) वह दृष्टिकोण है जो न केवल व्यक्तिगत जीवों, बल्कि समग्र पारिस्थितिकीय तन्त्रों, प्रजातियों और जैव-मण्डल में अंतर्निहित मूल्य मानता है। अल्डो लियोपोल्ड की 'भूमि नैतिकता' (Land Ethic) इस दृष्टिकोण की आधारशिला है। लियोपोल्ड का सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है कोई वस्तु तब उचित है जब वह जैव-समुदाय की एकता, स्थायित्व और सौन्दर्य को संरक्षित करे; अन्यथा वह अनुचित है। यह सूत्र पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद का नैतिक आधार है।

आर्ने नेस की 'गहरी पारिस्थितिकी' (Deep Ecology) इससे एक कदम आगे जाती है। नेस ने 'उथली पारिस्थितिकी' (Shallow Ecology) जो मानव हित के लिए पर्यावरण संरक्षण की वकालत करती है और 'गहरी पारिस्थितिकी' जो प्रकृति के अंतर्निहित मूल्य को स्वीकार करती है के बीच अन्तर स्पष्ट किया। गहरी पारिस्थितिकी के मूल सिद्धान्त हैं: सभी जीवन रूपों का समान आंतरिक मूल्य, जैव-विविधता का संवर्धन, मानव जनसंख्या में कमी, मानव-केन्द्रित अर्थव्यवस्था का रूपान्तरण, और जीवन की गुणवत्ता पर जोर न कि जीवन स्तर पर। नेस का 'आत्मबोध' (Self-Realization) का सिद्धान्त जिसके अनुसार व्यापक 'स्व' की पहचान प्रकृति तक फैलती है—भारतीय अद्वैत वेदान्त के 'तत्त्वमसि' से गहरी साम्यता रखता है।

गेया परिकल्पना (Gaia Hypothesis), जिसे जेम्स लवलॉक ने प्रस्तुत किया, पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद का एक वैज्ञानिक-दार्शनिक विस्तार है। इसके अनुसार पृथ्वी स्वयं एक जीवित जीव की भाँति कार्य करती है जिसमें समस्त जैविक और अजैविक घटक परस्पर नियन्त्रण और सन्तुलन की व्यवस्था बनाते हैं। यह परिकल्पना प्रकृति के प्रति मानव के दायित्व को एक नई गहराई देती है मानव न केवल एक नैतिक अभिकर्ता है, बल्कि एक वृहत्तर पारिस्थितिकीय व्यवस्था का हिस्सा भी है जिसे वह नष्ट करके स्वयं को भी नष्ट कर लेता है।

5. भारतीय दार्शनिक परम्पराओं में पर्यावरणीय नैतिकता-

भारतीय दार्शनिक परम्पराएँ पर्यावरणीय नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं। वैदिक साहित्य में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पंचमहाभूतों को जीवन के आधार के रूप में नैतिक सम्मान का पात्र माना गया है। अथर्ववेद की 'पृथ्वी सूक्त' में पृथ्वी से क्षमा-याचना करते हुए कहा गया है 'हे पृथ्वी, मैंने जो कुछ तुझसे लिया है वह तुझे लौटाऊँगा।' यह भाव पर्यावरणीय दायित्व की गहन अभिव्यक्ति है। ऋग्वेद में वनस्पतियों, नदियों और पर्वतों की स्तुति उन्हें देवत्व प्रदान करती है, जो उनके प्रति नैतिक सम्मान का भाव उत्पन्न करती है।

बौद्ध दर्शन में 'अहिंसा', 'करुणा' (Compassion) और 'मैत्री' (Loving-Kindness) की अवधारणाएँ सभी प्राणियों तक विस्तृत हैं न केवल मनुष्यों तक। बुद्ध ने स्वयं वृक्षों और वनों के प्रति सम्मान का भाव प्रकट किया था। बौद्ध 'प्रतीत्यसमुत्पाद' (Interdependent Origination) का सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि सभी अस्तित्व परस्पर निर्भर और सम्बद्ध हैं यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान के 'वेब ऑफ लाइफ' की अवधारणा से गहरा साम्य

रखता है। थाईलैण्ड और श्रीलंका में 'बौद्ध पारिस्थितिकी' (Buddhist Ecology) एक सक्रिय आन्दोलन का रूप ले चुकी है।

जैन दर्शन पर्यावरणीय नैतिकता की दृष्टि से विश्व की सर्वाधिक व्यापक परम्पराओं में से एक है। जैन अहिंसा का विस्तार एकेन्द्रिय जीवों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तक होता है। 'अपरिग्रह' (Non-Possessiveness) का सिद्धान्त उपभोक्तावाद और पर्यावरण के अत्यधिक दोहन के विरुद्ध एक शक्तिशाली नैतिक आदर्श प्रस्तुत करता है। जैन धर्म का 'अनेकान्तवाद' (Many-sidedness of Truth) विविध पर्यावरणीय दृष्टिकोणों के बीच संवाद और सन्तुलन की संभावना खोलता है।

गाँधी का पर्यावरण दर्शन आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता के लिए एक अत्यन्त प्रासंगिक वैकल्पिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। उनका सुप्रसिद्ध कथन 'पृथ्वी में प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए पर्याप्त है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लालच के लिए नहीं' पर्यावरणीय संयम की नैतिक अनिवार्यता को संक्षेप में व्यक्त करता है। उनका 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त यह मानता है कि मानव प्रकृति का स्वामी नहीं, ट्रस्टी (रक्षक) है। 'स्वदेशी' और 'सादा जीवन उच्च विचार' के उनके आदर्श उपभोक्तावादी जीवन-शैली के विकल्प हैं।

चिपको आन्दोलन (1973) भारतीय पर्यावरण नैतिकता की व्यावहारिक अभिव्यक्ति का एक अद्भुत उदाहरण है। उत्तराखण्ड की ग्रामीण महिलाओं द्वारा वृक्षों को आलिंगन करके उनकी कटाई का विरोध न केवल एक पर्यावरणीय आन्दोलन था, बल्कि एक दार्शनिक प्रकथन भी था कि वृक्ष संसाधन नहीं, परिवार के सदस्य हैं। 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' और 'बिश्नोई सम्प्रदाय' की परम्परा भी इसी दिशा में भारतीय पर्यावरणीय नैतिकता के जीवन्त उदाहरण हैं।

6. जलवायु न्याय और अन्तरपीढ़ीगत नैतिकता-

जलवायु न्याय (Climate Justice) पर्यावरण नीतिशास्त्र का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समकालीन आयाम है। इसका मूल प्रश्न यह है कि जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी देश मुख्यतः विकसित औद्योगिक देश हैं, किन्तु इसके सर्वाधिक दुष्परिणाम भोगने वाले देश विकासशील और अल्प-विकसित देश हैं — जैसे बांग्लादेश, मालदीव, अफ्रीकी देश और

प्रशांत द्वीप राष्ट्र। यह एक गहरी नैतिक विसंगति है। न्यायवादी दृष्टिकोण से 'प्रदूषक भुगतान करे' (Polluter Pays) का सिद्धान्त इस विसंगति को दूर करने का एक नैतिक आधार प्रस्तुत करता है।

अन्तरपीढ़ीगत नैतिकता (Intergenerational Ethics) यह प्रश्न उठाती है कि क्या हमारा दायित्व केवल वर्तमान पीढ़ी के प्रति है या भावी पीढ़ियों के प्रति भी? जॉन रॉल्स का 'न्याय का सिद्धान्त' (Theory of Justice) और उनका 'अज्ञानता का पर्दा' (Veil of Ignorance) इस प्रश्न पर एक महत्वपूर्ण दृष्टि प्रदान करता है — यदि हम नहीं जानते कि हम किस पीढ़ी में पैदा होंगे, तो हम ऐसे सिद्धान्त चुनेंगे जो समस्त पीढ़ियों के लिए न्यायसंगत हों। 'सतत विकास' (Sustainable Development) की अवधारणा—जो ब्रुंडलैण्ड रिपोर्ट (1987) में परिभाषित की गई थी इसी अन्तरपीढ़ीगत दायित्व की नीतिगत अभिव्यक्ति है।

प्रकृति के अधिकार (Rights of Nature) का विचार पर्यावरण नीतिशास्त्र का एक नवीन और क्रांतिकारी आयाम है। 2017 में न्यूजीलैण्ड ने वांगानुई नदी को एक कानूनी व्यक्ति (Legal Person) का दर्जा दिया। 2016 में कोलम्बिया के सर्वोच्च न्यायालय ने अमेजन के वनों को कानूनी अधिकार प्रदान किए। 2017 में भारत के उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय ने गंगा और यमुना नदियों को 'जीवित व्यक्ति' का दर्जा देने का ऐतिहासिक निर्णय दिया था — हालाँकि बाद में इसे उच्चतम न्यायालय ने पलट दिया। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि पर्यावरण नीतिशास्त्र के विचार ठोस कानूनी और राजनीतिक रूप लेते जा रहे हैं।

7. पर्यावरण नीतिशास्त्र के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ-

पर्यावरण नीतिशास्त्र के सामने अनेक दार्शनिक और व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। प्रथम चुनौती 'विकास बनाम पर्यावरण' का द्वंद्व है। विकासशील देशों में करोड़ों लोग अभी भी गरीबी, कुपोषण और मूलभूत सुविधाओं के अभाव में जी रहे हैं। उनके लिए पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के बीच चयन एक तीव्र नैतिक दुविधा है। क्या विकासशील देशों से वही पर्यावरणीय मानक अपेक्षित हों जो विकसित देशों के लिए निर्धारित हैं? क्या यह एक प्रकार का 'हरित उपनिवेशवाद' (Green Colonialism) नहीं है?

द्वितीय चुनौती 'पर्यावरणीय नस्लवाद' (Environmental Racism) है यह तथ्य कि औद्योगिक प्रदूषण, विषाक्त कचरे और पर्यावरणीय क्षरण का बोझ असमान रूप से हाशिये के समुदायों दलित, आदिवासी, और निर्धन वर्ग — पर पड़ता

है। भारत में औद्योगिक अपशिष्ट से प्रदूषित नदियाँ प्रायः उन क्षेत्रों में हैं जहाँ वंचित समुदाय निवास करते हैं। यह पर्यावरण नीतिशास्त्र और सामाजिक न्याय के गहरे अन्तर्सम्बन्ध को उजागर करता है। तृतीय चुनौती 'उपभोक्तावाद और पूँजीवाद' है आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की संरचना ही निरन्तर उत्पादन और उपभोग की माँग करती है जो पर्यावरण के लिए अनिवार्यतः हानिकारक है। इस संरचना को बिना बदले पर्यावरण संकट का कोई स्थायी समाधान संभव नहीं है यह तर्क 'पारिस्थितिकीय मार्क्सवाद' (Eco-Marxism) की मुख्य स्थापना है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध पत्र के विस्तृत दार्शनिक विश्लेषण से निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष उभरकर आते हैं। प्रथमतः, पर्यावरण संकट मूलतः एक नैतिक और दार्शनिक संकट है। इसकी जड़ें उस विश्वदृष्टि में हैं जो प्रकृति को मानव उपभोग की वस्तु मानती है, जो तत्काल लाभ को दीर्घकालिक स्थायित्व से ऊपर रखती है, और जो मानव को प्रकृति का स्वामी मानती है न कि उसका संरक्षक। जब तक इस विश्वदृष्टि में मूलभूत परिवर्तन नहीं होगा, तब तक तकनीकी और नीतिगत उपाय पर्याप्त नहीं होंगे।

द्वितीयतः, मानवकेन्द्रवाद से जीवकेन्द्रवाद और पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद तक पर्यावरण नीतिशास्त्र की यात्रा नैतिक चेतना के विस्तार की यात्रा है। जिस प्रकार ऐतिहासिक रूप से नैतिक चेतना का विस्तार दास-मुक्ति, महिला अधिकार और नागरिक अधिकार आन्दोलनों के माध्यम से होता रहा है, उसी प्रकार अब उसे प्रकृति तक विस्तृत होना आवश्यक है। प्रकृति के अंतर्निहित मूल्य की स्वीकृति इस विस्तार का दार्शनिक आधार है।

तृतीयतः, भारतीय दार्शनिक परम्पराएँ—वैदिक, बौद्ध, जैन और गाँधीवादी—पर्यावरणीय नैतिकता के लिए एक समृद्ध, प्रामाणिक और प्रासंगिक वैकल्पिक आधार प्रस्तुत करती हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, वसुधैव कुटुम्बकम् और ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धान्त वैश्विक पर्यावरणीय विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इन्हें केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और व्यावहारिक नीतिगत सिद्धान्तों के रूप में भी ग्रहण किया जाना चाहिए।

चतुर्थतः, जलवायु न्याय और अन्तरपीढ़ीगत नैतिकता पर्यावरण नीतिशास्त्र के वे आयाम हैं जो इसे सामाजिक न्याय और राजनीतिक दर्शन से जोड़ते हैं। पर्यावरण संकट का भार असमान रूप से विकासशील देशों, वंचित समुदायों और भावी पीढ़ियों पर पड़ता है इस असमानता को दूर करना पर्यावरणीय नैतिकता का एक अनिवार्य आयाम है। पंचमतः,

पर्यावरण नीतिशास्त्र एक व्यावहारिक अनुशासन भी है। प्रकृति के अधिकारों की कानूनी मान्यता, 'पारिस्थितिकीय लोकतन्त्र' (Ecological Democracy) की स्थापना, 'हरित अर्थव्यवस्था' का विकास और पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान का संरक्षण ये सभी पर्यावरण नीतिशास्त्र के व्यावहारिक प्रकथन हैं जिनकी दिशा में गम्भीर प्रयास आवश्यक हैं।

सुझाव (Recommendations)

प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रथम सुझाव यह है कि भारत के संविधान में 'पर्यावरण के अधिकार' को एक मौलिक अधिकार के रूप में सम्मिलित किया जाए। वर्तमान में अनुच्छेद 48-क (पर्यावरण संरक्षण) एक निदेशक तत्त्व है; इसे मौलिक अधिकार बनाने से पर्यावरणीय दायित्व को एक संवैधानिक नैतिक आधार मिलेगा। साथ ही, प्रमुख नदियों, वनों और पर्वत-शृंखलाओं को कानूनी व्यक्तित्व प्रदान करने पर विचार किया जाए।

द्वितीय सुझाव यह है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर 'पर्यावरण नैतिकता' को एक अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाए। प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा तक — विशेषकर इंजीनियरिंग, प्रबन्धन और विधि संकायों में — पर्यावरणीय दायित्व की दार्शनिक समझ विकसित करना आवश्यक है। तृतीय सुझाव यह है कि 'पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान' (Traditional Ecological Knowledge) — जो आदिवासी समुदायों, किसानों और वन-निवासियों में संचित है — को राष्ट्रीय पर्यावरण नीति में केन्द्रीय स्थान दिया जाए। ये समुदाय पीढ़ियों से पर्यावरण के साथ टिकाऊ सम्बन्ध बनाए हुए हैं और उनका ज्ञान आधुनिक पर्यावरण प्रबन्धन के लिए अमूल्य है।

चतुर्थ सुझाव यह है कि 'जलवायु न्याय कोष' की स्थापना की जाए जिसमें विकसित औद्योगिक देश अपने ऐतिहासिक कार्बन उत्सर्जन के अनुपात में योगदान करें और इस कोष से विकासशील देशों में पर्यावरणीय अनुकूलन और स्वच्छ ऊर्जा के लिए संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ। भारत को इस माँग को वैश्विक मंच पर दृढ़ता से उठाना चाहिए। पंचम सुझाव यह है कि 'पारिस्थितिकीय लेखाकरण' (Ecological Accounting) को राष्ट्रीय आय के मापदण्ड में शामिल किया जाए। वर्तमान GDP की अवधारणा पर्यावरणीय क्षरण को 'लागत' नहीं, बल्कि कभी-कभी 'उत्पादन' मान लेती है। एक 'हरित GDP' जो पर्यावरणीय पूँजी के क्षरण को घटाकर वास्तविक विकास की गणना करे, नीति-निर्माण में पर्यावरणीय नैतिकता को व्यावहारिक रूप से समावेशित करेगी।

षष्ठ सुझाव यह है कि गाँधी के 'अपरिग्रह' और 'सादा जीवन' के आदर्शों को आधुनिक संदर्भ में 'टिकाऊ जीवन-शैली' के रूप में प्रोत्साहित किया जाए। सरकार, मीडिया और नागरिक समाज मिलकर उपभोक्तावाद की संस्कृति के विकल्प के रूप में न्यूनतम उपभोग, पुनर्चक्रण और स्थानीय उत्पाद के उपयोग को प्रोत्साहित कर सकते हैं। सप्तम सुझाव यह है कि पर्यावरण नीतिशास्त्र पर अन्तरविषयक शोध को प्रोत्साहित किया जाए जो दर्शनशास्त्र, पर्यावरण विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और विधि के सहयोग से पर्यावरणीय दायित्व के व्यावहारिक मॉडल विकसित करे। भारतीय विश्वविद्यालयों में 'पर्यावरण नैतिकता' के स्वतन्त्र शोध केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. अथर्ववेद — पृथ्वी सूक्त (12.1). संस्करण: सायण भाष्य सहित. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
2. उपाध्याय, बालदेव (1998). भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसी: शारदा मन्दिर.
3. गाँधी, मोहनदास करमचन्द्र (1927). मेरे सपनों का भारत. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
4. गुहा, रामचन्द्र (2000). पर्यावरणवाद: एक वैश्विक इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएण्ट ब्लैकस्वान.
5. तिवारी, बट्टी नारायण (2011). पर्यावरण और भारतीय परम्परा. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.
6. मिश्र, विजय कुमार (2014). पर्यावरण नीतिशास्त्र: एक दार्शनिक विवेचन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
7. शर्मा, चन्द्रधर (2000). भारतीय दर्शन: एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.
8. Callicott, J. Baird (1989). In Defense of the Land Ethic: Essays in Environmental Philosophy. Albany: State University of New York Press.
9. Carson, Rachel (1962). Silent Spring. Boston: Houghton Mifflin.
10. Devall, Bill & Sessions, George (1985). Deep Ecology: Living as if Nature Mattered. Layton: Gibbs Smith.
11. Gandhi, M.K. (1927). An Autobiography: The Story of My Experiments with Truth. Ahmedabad: Navajivan Publishing House.
12. Guha, Ramachandra & Martinez-Alier, Juan (1997). Varieties of Environmentalism: Essays North and South. London: Earthscan.

13. Leopold, Aldo (1949). *A Sand County Almanac*. New York: Oxford University Press.
14. Lovelock, James (1979). *Gaia: A New Look at Life on Earth*. Oxford: Oxford University Press.
15. Næss, Arne (1973). The Shallow and the Deep, Long-Range Ecology Movement. *Inquiry*, 16(1-4), 95-100.
16. Rawls, John (1971). *A Theory of Justice*. Cambridge: Harvard University Press.
17. Schweitzer, Albert (1923). *The Philosophy of Civilization*. London: A & C Black.
18. Singer, Peter (1975). *Animal Liberation*. New York: New York Review/Random House.
19. Taylor, Paul W. (1986). *Respect for Nature: A Theory of Environmental Ethics*. Princeton: Princeton University Press.
20. United Nations (1987). *Our Common Future: Report of the World Commission on Environment and Development (Brundtland Report)*. New York: UN.
21. United Nations (1992). *Rio Declaration on Environment and Development*. New York: United Nations.
22. Westra, Laura & Wenz, Peter S. (Eds.) (1995). *Faces of Environmental Racism: Confronting Issues of Global Justice*. Lanham: Rowman & Littlefield.